

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधेयकों पर राज्यपालों की निष्क्रियता पर उठाए गए प्रश्न: अनुच्छेद 200 के विवेकाधिकार की न्यायिक समीक्षा

UPSC प्रासंगिकता

- सामान्य अध्ययन-II (राजनीति एवं संविधान): संघवाद, केंद्र-राज्य संबंध, संवैधानिक प्राधिकारी, राज्यपालों की भूमिका।
- सामान्य अध्ययन-II (शासन): विधायी-कार्यपालिका संबंध, न्यायिक समीक्षा।
- निबंध एवं नैतिकता: संवैधानिक नैतिकता, लोकतांत्रिक जवाबदेही, नियंत्रण एवं संतुलन।



चर्चा में क्यों ?

- हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने चिंता जताई कि कुछ राज्यपाल राज्य विधानसभाओं से पास हुए विधेयकों पर समय पर कोई फैसला नहीं ले रहे हैं। कोर्ट ने कहा कि यह स्थिति संविधान के खिलाफ है क्योंकि इससे राज्य सरकारों की लोकतांत्रिक प्रक्रिया कमजोर होती है और संघीय ढांचे का संतुलन बिगड़ता है। अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल के पास बिल को मंजूरी देने, रोकने या राष्ट्रपति के पास भेजने के विकल्प होते हैं, लेकिन इन पर भी समय से निर्णय जरूरी है।

पृष्ठभूमि

- यह विवाद पंजाब, तमिलनाडु, तेलंगाना, केरल और पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में ज्यादा देखने को मिला है, जहां राज्य सरकारों ने आरोप लगाया कि राज्यपाल जानबूझकर बिलों को बिना निर्णय के लटकाए हुए हैं। इससे यह बहस खड़ी हो गई कि क्या राज्यपाल इस तरह का विवेकाधिकार रख सकते हैं, या यह संविधान में बताए गए "संवैधानिक भरोसे" के सिद्धांत का उल्लंघन है।

उदाहरण

- पंजाब में 2023 में राज्यपाल ने कई बिलों पर सहमति देने में देरी की, जिनमें एक अहम वित्त विधेयक भी शामिल था। तमिलनाडु में भी सामाजिक न्याय और विश्वविद्यालयों से जुड़े बिल रोके गए। सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि राज्यपालों को बिलों पर अनिश्चितकाल तक चुप नहीं बैठना चाहिए, उन्हें संविधान के मुताबिक समय पर फैसला लेना होगा।

अनुच्छेद 200: विधेयकों पर राज्यपाल की सहमति

जब किसी राज्य की विधानसभा कोई विधेयक (Bill) पारित करती है, तो वह सीधे कानून नहीं बनता। सबसे पहले वह राज्यपाल के पास भेजा जाता है। राज्यपाल के पास उस पर चार तरह के निर्णय लेने का अधिकार होता है:

1. विधेयक को मंजूरी देना (Assent to the Bill)

- इसका मतलब है कि राज्यपाल बिल को स्वीकृति दे सकते हैं।
- जब राज्यपाल की मंजूरी मिल जाती है, तो वह बिल कानून बन जाता है।

- अधिकतर सामान्य विधेयकों में बिना किसी विवाद के यही प्रक्रिया अपनाई जाती है।
उदाहरण: साधारण प्रशासनिक या बजट से जुड़े बिल जिनमें आमतौर पर कोई आपत्ति नहीं होती।

2. मंजूरी न देना (Withhold Assent)

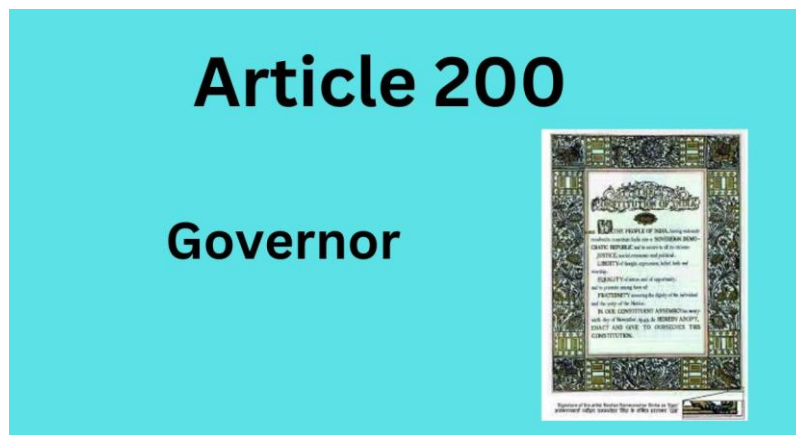
- इसमें राज्यपाल बिल को पूरी तरह से नामंजूर कर सकते हैं।
- हालांकि यह विकल्प बहुत ही कम लिया जाता है, क्योंकि यह लोकतांत्रिक सिद्धांतों के खिलाफ माना जाता है।
- इससे राज्य और केंद्र सरकार के बीच राजनीतिक टकराव की स्थिति पैदा हो सकती है।
उदाहरण: केवल कुछ चुनिंदा मामलों में ही राज्यपालों ने ऐसा किया है, खासकर जब विवादस्पद कानूनों की बात हो।

3. बिल को पुनर्विचार के लिए लौटाना (Return the Bill – यदि मनी बिल न हो)

- अगर बिल धन विधेयक (Money Bill) नहीं है, तो राज्यपाल उसे विधानसभा को दोबारा विचार के लिए लौटा सकते हैं।
- विधानसभा चाहे तो उसमें संशोधन करे या वैसे ही दोबारा पारित करे।
- जब बिल दोबारा पास हो जाता है, तो राज्यपाल को उसे मंजूरी देना अनिवार्य होता है।
उदाहरण: यह एक संतुलन बनाने का तरीका है — राज्यपाल अपनी राय जता सकते हैं, लेकिन अंतिम निर्णय विधानसभा का ही होता है।

4. बिल को राष्ट्रपति के पास भेजना (Reserve the Bill for the President)

- राज्यपाल चाहें तो बिल पर खुद कोई निर्णय न लेकर उसे भारत के राष्ट्रपति के पास भेज सकते हैं।
- ऐसा तब किया जाता है जब बिल:
 - संविधान के अनुरूप खरा न उतरता हो,
 - केंद्र सरकार के अधिकारों या हितों को प्रभावित करता हो,
 - या न्यायपालिका जैसे मुद्दों से जुड़ा हो।
- इस पर अंतिम फैसला राष्ट्रपति लेते हैं — वह या तो मंजूरी दे सकते हैं या बिल को अस्वीकार कर सकते हैं।
उदाहरण: भूमि अधिग्रहण, पुलिस अधिकार जैसे विषयों पर बनाए गए बिल अक्सर राष्ट्रपति के पास भेजे जाते हैं।



राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियाँ

कुछ शक्तियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें राज्यपाल अपने विवेक से, यानी राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना भी इस्तेमाल कर सकते हैं। इनमें से एक प्रमुख उदाहरण है — किसी विधेयक को राष्ट्रपति के के विचारार्थ आरक्षित करना। हालाँकि व्यवहार में यह उम्मीद की जाती है कि राज्यपाल इन शक्तियों का इस्तेमाल बहुत सोच-समझकर और सीमित रूप में करें, ताकि इनका राजनीतिक दुरुपयोग न हो।

1. संवैधानिक विवेकाधिकार

ये वे शक्तियाँ हैं जो संविधान में साफ़ तौर पर लिखी हुई हैं और राज्यपाल को विशेष रूप से दी गई हैं।

- अगर कोई मामला राज्यपाल की विवेकाधीन श्रेणी में आता है, तो उस पर लिया गया निर्णय अंतिम होता है।
- केवल यह कहकर अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती कि राज्यपाल को यह शक्ति इस्तेमाल करनी चाहिए थी या नहीं।

उदाहरण:

- राष्ट्रपति के विचारार्थ बिल को आरक्षित करना (अनुच्छेद 200)।
- राज्य में राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करना (अनुच्छेद 356)।
- किसी पड़ोसी केंद्रशासित प्रदेश का प्रशासक नियुक्त किए जाने पर उस भूमिका का निर्वाह।
- असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम जैसे राज्यों में आदिवासी स्वायत्त परिषदों को खनिज संसाधनों से मिलने वाली रेंटल्टी तय करना।

मुख्य बात: ये सभी शक्तियाँ संविधान में स्पष्ट रूप से लिखी गई हैं और इनका कानूनी आधार है।

2. परिस्थितिगत विवेकाधिकार

ये शक्तियाँ संविधान में साफ़ तौर पर नहीं लिखी होतीं, लेकिन कुछ राजनीतिक या व्यावहारिक परिस्थितियों में राज्यपाल को विवेक से फैसला लेना पड़ता है।

उदाहरण:

- मुख्यमंत्री की नियुक्ति:** जब विधानसभा में किसी भी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता (जैसे 'हंग असेंबली'), या मुख्यमंत्री की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है और कोई उत्तराधिकारी साफ़ नहीं होता।
- मंत्रिपरिषद को बर्खास्त करना:** अगर मंत्रिपरिषद विधानसभा में विश्वास खो देती है लेकिन इस्तीफा देने से इनकार करती है।
- विधानसभा भंग करना:** जब सरकार बहुमत खो चुकी हो और कोई दूसरी स्थिर सरकार बनने की संभावना न हो।

मुख्य बात: ये शक्तियाँ संविधान में स्पष्ट रूप से नहीं लिखी होतीं, लेकिन परंपरा और व्यावहारिकता के आधार पर अपनाई जाती हैं।

राज्यपाल की भूमिका पर संवैधानिक बहस

1. राज्यपाल एक संवैधानिक प्रमुख के रूप में

- अनुच्छेद 163 के तहत राज्यपाल को सामान्य रूप से राज्य की मंत्रिपरिषद की सलाह और सहायता पर कार्य करना होता है, सिवाय उन मामलों के जहाँ संविधान उन्हें विवेकाधीन शक्ति देता है।
- इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो राज्यपाल का पद राष्ट्रपति के समान एक औपचारिक प्रमुख के रूप में है न कि वास्तविक कार्यपालिका के रूप में।

2. राजनीतिक प्रतिनिधि नहीं

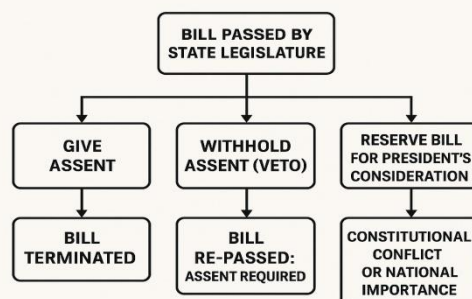
- संविधान सभा की बहसों से यह स्पष्ट था कि राज्यपाल को एक तटस्थ व्यक्ति के रूप में कार्य करना चाहिए, जो संविधान के सुचारु संचालन को सुनिश्चित करे।
- संविधान निर्माताओं ने यह विचार साफ तौर पर स्वारिज कर दिया था कि राज्यपाल केंद्र सरकार के राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में काम करें। लेकिन व्यवहार में देखा गया है कि खासकर जब राज्य में विपक्ष की सरकार होती है, तो राज्यपाल को अक्सर केंद्र सरकार के एजेंट के रूप में देखा जाता है।

3. संवैधानिक नैतिकता

- जब राज्यपाल निर्वाचित विधानसभा द्वारा पारित विधेयकों को मंजूरी देने में देरी करते हैं या मना करते हैं, तो यह जनता के जनादेश और लोकतांत्रिक सिद्धांतों को कमजोर करता है।
- ऐसी गतिविधियाँ संविधान की भावना के खिलाफ होती हैं, क्योंकि वे प्रतिनिधि लोकतंत्र का सम्मान नहीं करती।
- संवैधानिक नैतिकता** का ताकाजा है कि राज्यपाल को पक्षपात से दूर रहकर निष्पक्ष, लोकतांत्रिक और विधिसम्मत व्यवहार करना चाहिए।

राज्यपाल की भूमिका मूल रूप से **संवैधानिक और गैर-राजनीतिक** होनी चाहिए — एक ऐसा पद जो कानून और शासन की स्थिरता सुनिश्चित करे। लेकिन व्यवहार में अनुच्छेद 200 (बिल पर सहमति) और अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) जैसी शक्तियों के बार-बार दुरुपयोग ने राज्यपाल के पद को राजनीतिक विवाद का केंद्र बना दिया है।

GOVERNOR'S VETO POWER UNDER ARTICLE 200



राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों पर न्यायिक रुख

1. शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1974)

- सुप्रीम कोर्ट ने साफ किया कि राज्यपाल केवल एक **संवैधानिक प्रमुख** हैं।
 - उन्हें ज्यादातर मामलों में राज्य मंत्रिपरिषद की सलाह पर ही काम करना होता है, केवल कुछ **असाधारण स्थितियों** को छोड़कर जहाँ संविधान खुद विवेकाधिकार देता है।
- मुख्य विचार:** राज्यपाल = स्वतंत्र कार्यपालिका नहीं हैं। वे अपने विवेक से हर निर्णय नहीं ले सकते।

2. नाबम रेबिया बनाम डिप्टी स्पीकर (2016)

- यह केस अरुणाचल प्रदेश में हुए राजनीतिक संकट से जुड़ा था।
 - कोर्ट ने कहा कि राज्यपाल सामान्य या योजमर्रा के मामलों में स्वतंत्र रूप से कार्रवाई नहीं कर सकते।
 - उनकी शक्तियाँ असीमित नहीं हैं और उन्हें मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुरूप ही काम करना चाहिए।
- मुख्य विचार:** विवेक का दायरा सीमित है — राज्यपाल को नियमों और सलाह के अनुसार ही चलना चाहिए।

3. हालिया सुप्रीम कोर्ट टिप्पणियाँ (2023-24)

- सुप्रीम कोर्ट ने उन राज्यपालों की आलोचना की जो विधेयकों को बिना किसी निर्णय के लंबे समय तक लंबित रखते हैं।
- कोर्ट ने इसे **संवैधानिक रूप से गलत** बताया और कहा कि ऐसी निष्क्रियता **न्यायिक समीक्षा (judicial review)** के दायरे में आ सकती है।

मुख्य विचार: राज्यपाल को किसी भी बिल पर समय से फैसला लेना चाहिए — या तो मंजूरी दें, वापस भेजें या राष्ट्रपति को भेजें।

न्यायिक समीक्षा

- यह न्यायपालिका की जाँच करने की शक्ति है जो यह देखती है कि विधायिका या कार्यपालिका के कार्य संविधान के अनुरूप हैं या नहीं।
- यह राज्यपालों द्वारा शक्ति के मनमाने प्रयोग के विरुद्ध नियंत्रण और संतुलन सुनिश्चित करता है।

संघीय व्यवस्था और राजनीतिक तनाव

यह विवाद भारत की संघीय व्यवस्था में केंद्र और राज्यों के बीच तनाव को उजागर करता है।

- **राज्य सरकारों का पक्ष:** उनका मानना है कि राज्यपाल अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहे हैं और राज्य की नीतियों को रोकने के लिए केंद्र सरकार के एजेंट के रूप में काम कर रहे हैं।
- **केंद्र सरकार का पक्ष:** केंद्र का कहना है कि राज्यपाल यह सुनिश्चित कर रहे हैं कि राज्य सरकारें ऐसे कानून न बनाएँ जो राष्ट्रीय हित या संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ हों।

उदाहरण: तमिलनाडु और केरल में शिक्षा से जुड़े कुछ बिलों को राष्ट्रपति के पास इसलिए भेजा गया क्योंकि वे केंद्र सूची (Union List) से टकरा रहे थे।



लोकतंत्र और शासन पर प्रभाव

www.resultmitra.com



9235313184, 9235440806

1. संघीय संतुलन का हास

- संविधान भारत में एक **संघीय ढांचे** की कल्पना करता है जिसमें केंद्र को थोड़ी अधिक शक्ति दी गई है।
- लेकिन अगर राज्यपाल अपनी विवेकाधीन शक्तियों का **ज्यादा या पक्षपातपूर्ण** उपयोग करते हैं, तो यह केंद्र और राज्य के बीच संतुलन को बिगाड़ सकता है।

उदाहरण: राजनीतिक कारणों से बिलों को राष्ट्रपति के पास भेजना राज्यों की स्वायत्तता को कमजोर करता है।

2. विधायी ठहराव

- जब राज्यपाल किसी विधेयक पर निर्णय लेने में देरी करते हैं या सहमति नहीं देते, तो राज्य विधानसभाएँ अपना कानून बनाने का अधिकार खो बैठती हैं।
- इससे जनता के जनादेश का अपमान होता है।

उदाहरण: तमिलनाडु, तेलंगाना और केरल में हालिया मामलों में कई बिल राज्यपाल के पास लंबे समय तक रुके रहे।

3. न्यायिक बोझ

- राज्यपाल और राज्य सरकारों के बीच राजनीतिक विवाद अब बड़ी संख्या में सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट्स तक पहुँच रहे हैं।
- इससे न्यायपालिका का समय और ऊर्जा अन्य जरूरी मामलों से हट जाती है।
उदाहरण: नाबाम रेबिया केस (2016) और 2023-24 में लंबित बिलों पर हुई सुनवाई इसका उदाहरण है।

4. लोकतांत्रिक भावना का हास

- राज्यपाल निर्वाचित नहीं होते, लेकिन फिर भी उनकी विवेकाधीन कार्रवाईयों से वे राज्यों की चुनी हुई सरकारों से ऊपर दिखाई देते हैं।
- इससे जनता का भरोसा लोकतांत्रिक संस्थाओं पर कमजोर होता है।
उदाहरण: जब राज्यपाल सरकार को बर्खास्त करते हैं या बिलों को रोकते हैं, तो ऐसा लगता है कि राज्य का लोकतंत्र बाहर से नियंत्रित किया जा रहा है।

आगे की राह

1. बिल पर सहमति के लिए स्पष्ट समयसीमा-

- जैसे राष्ट्रपति को समयबद्ध तरीके से निर्णय लेना होता है, वैसे ही राज्यपालों के लिए भी एक निश्चित समय-सीमा तय की जानी चाहिए।
- यदि 3 से 6 महीने की अवधि निर्धारित कर दी जाए, तो बिलों को अनिश्चितकाल तक लटकाने की समस्या दूर हो सकती है।

2. परंपराओं का विधिक रूप में निर्धारण

- संसद एक ऐसा कानून या दिशानिर्देश बना सकती है जो अनुच्छेद 200 में विवेकाधिकार की स्पष्ट सीमाएं तय करे।
- इससे राज्यों में एकरूपता आएगी और राज्यपाल की भूमिका को लेकर भ्रम कम होगा।

3. सहकारी संघवाद को मजबूत करना

- केंद्र द्वारा नियुक्त राज्यपालों और राज्य सरकारों के बीच टकराव को आपसी संवाद और सम्मान के ज़रिए कम किया जा सकता है।
- अंतर्राज्यीय परिषद जैसे मंचों के माध्यम से नियमित बातचीत से भरोसा और सहयोग बढ़ेगा।

4. न्यायिक सुरक्षा

- सुप्रीम कोर्ट कुछ स्पष्ट और बाध्यकारी सिद्धांत तय कर सकता है ताकि राज्यपाल विवेक का गलत इस्तेमाल न कर सकें।
- यदि राज्यपाल की ओर से अनावश्यक देरी या मनमानी हो, तो न्यायिक समीक्षा (Judicial Review) से जवाबदेही सुनिश्चित की जा सकती है।



5. राज्यपाल की भूमिका पर पुनर्विचार

सरकारिया आयोग (1988) और पूँछी आयोग (2010) की सिफारिशों पर दोबारा विचार करने की ज़रूरत है:

- राज्यपाल का पद पूरी तरह गैर-राजनीतिक और तटस्थ होना चाहिए
- राज्यपाल के कार्यकाल की सुरक्षा सुनिश्चित की जाए ताकि वे राजनीतिक दबाव में न आएँ।
- उनकी विवेकाधीन शक्तियाँ केवल संविधान में निर्दिष्ट सीमाओं तक सीमित की जानी चाहिए।

निष्कर्ष

राज्यपाल द्वारा विधेयकों पर कोई कार्रवाई न करने को लेकर चल रही वर्तमान टकराव केवल एक राजनीतिक मुद्दा नहीं, बल्कि एक **संवैधानिक चुनौती** है। यह भारत की संघीय संरचना, शक्तियों के पृथक्करण और प्रतिनिधि लोकतंत्र की मूल भावना को प्रभावित करता है। अनुच्छेद 200 के तहत राज्यपाल के विवेकाधिकार की **न्यायिक समीक्षा** आवश्यक है ताकि संविधान की आत्मा बनी रहे और यह सुनिश्चित हो सके कि राज्यपाल लोकतांत्रिक प्रक्रिया में **सहायक** बनें, **बाधा** नहीं।

यूपीएससी प्रारंभिक परीक्षा अभ्यास प्रश्न

Q) भारतीय संविधान के अनुच्छेद 200 के संबंध में निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए:

1. यह राज्यपाल को विधेयक पर सहमति देने, अस्वीकार करने, या राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखने का अधिकार देता है।
2. संविधान में यह निर्धारित किया गया है कि राज्यपाल को विधेयक पर निश्चित समय सीमा के भीतर निर्णय लेना होगा।
3. राज्यपाल (मनी बिल को छोड़कर) किसी विधेयक को पुनर्विचार के लिए राज्य विधानसभा को लौटा सकते हैं।

उपरोक्त में से कौन सा/से कथन सही है/हैं?

A. केवल 1 और 2

B. केवल 2 और 3

C. केवल 1 और 3

D. 1, 2 और 3 सभी

उत्तर – (C)

मुख्य परीक्षा अभ्यास प्रश्न

प्र. अनुच्छेद 200 के अंतर्गत राज्यपालों की निष्क्रियता पर हाल ही में सुप्रीम कोर्ट द्वारा किए गए हस्तक्षेप ने **संघवाद और संवैधानिक नैतिकता** पर बहस को फिर से जीवित कर दिया है। चर्चा कीजिए। (10 अंक, 150 शब्द)

